में सात स्थल कहे गये हैं। इस तरह तीन महाअधिकारों में अंतर स्थल अनेक हैं। एक तो इस प्रकार पातनिका कही, अथवा अन्य तरह कथन कर दूसरी पातनिका कहते है – पहले अधिकार में बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा के कथन की मुख्यता कर क्षेपकों को छोड़कर एक सौ तेईस दोहे कहे हैं। उनमें से 'जे जाया' इत्यादि पच्चीस दोहा पर्यन्त तीन प्रकार आत्मा के कथन का पीठिका व्याख्यान, 'जेहउ णिम्मलु' इत्यादि चौबीस दोहापर्यन्त सामान्य वर्णन, 'अप्पा जोइय सव्वगउ' इत्यादि तेतालीस दोहापर्यन्त विशेष वर्णन और 'अप्पा संजमु' इत्यादि इकतीस दोहापर्यन्त चूलिका व्याख्यान है। इस तरह अंतर अधिकारों सहित पहला महाधिकार कहा। इसके बाद मोक्ष, मोक्षफल और मोक्षमार्ग के स्वरूप के कथन की मुख्यता कर क्षेपकों के सिवाय दो सौ चौदह दोहापर्यन्त दूसरा महाधिकार है। उसमें 'सिरि गुरु' इत्यादि तीस दोहापर्यन्त पीठिका व्याख्यान, 'जो भत्तउ' इत्यादि छत्तीस दोहापर्यन्त सामान्यवर्णन और 'सुद्धह संजमु' इत्यादि इकतालीस दोहापर्यन्त विशेष वर्णन है, उसके बाद 'उक्तं च' को छोड़कर एक सौ सात दोहापर्यन्त अभेदरत्नत्रय की मुख्यता कर चूलिका व्याख्यान है। इस तरह दूसरी पातानिका जाननी चाहिए।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल ९, रविवार,
दिनांक-०६-०६-१९७६, गाथा-१, प्रवचन-१

यह परमात्मप्रकाश। अभी बहुत वर्ष से वाँचन नहीं किया था। पुस्तकें किसी के पास होंगी, किसी के पास नहीं। यह बाहर कहीं मिलती नहीं। यह योगीन्दुदेव कृत है योगीन्द्र, योगीन्दु, ऐसा लिखते हैं। योगीन्द्र की ना करते हैं। योगीन्दु... ऐसा कहते हैं। छठवीं शताब्दी में हुए हैं, ऐसा कहते हैं। ईसवी सन् ६। अध्यात्म का ग्रन्थ है। जिसमें समयसार आदि की बहुत बात इन्होंने ली है। परन्तु मात्र अध्यात्म की भावना का ग्रन्थ, भाव को घोंटा है। छोटाभाई आये नहीं? कल आये थे। सवेरे आ गये? सवेरे आ गये। दोनों आँखों से दिखता नहीं, ऐसा है।

'**ॐ श्री परमात्मने नमः श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचितः**' परमात्मप्रकाश की टीका का.... ब्रह्मदेव ने टीका की है, उस टीका का पहला श्लोक है।

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः।।१।।

अब पण्डित दौलतरामजी स्वयं थोड़ी टीका करते हैं। हिन्दी टीकाकार हैं।

चिदानंद चिद्रूप जो, जिन परमातम देव।
सिद्धरूप सुविसुद्ध जो, नमों ताहि करि सेव।।१।।

चिदानन्द, ज्ञानानन्द चिद्रूप आत्मा। चिदानन्द ज्ञानानन्द और चिद्रूप। ऐसा। ज्ञानानन्दरूप चिद्रूप। जिन परमात्मदेव। वीतराग परमात्मदेव। चिद्रूप '**सुविसुद्ध**' जो निर्मल पूर्ण दशा जिन्हें प्रगट हुई। '**नमों ताहि करि सेव**' उनकी सेवा करके मैं नमस्कार करता हूँ। '**परमातम निजवस्तु जो**' अपनी वस्तु ही परमात्मा है। '**गुण अनंतमय शुद्ध**' जिसके अनन्त गुण हैं। '**ताहि प्रकाशनके निमित्त**' उस परमात्मा को प्रकाशित करने के कारण '**वंदूं देव प्रबुद्ध**' ऐसे देव को भगवान प्रबुद्ध जो सर्वज्ञपरमात्मा हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

अब टीका का अर्थ है। **श्री जिनेश्वरदेव शुद्ध परमात्मा आनन्दरूप चिदानन्दचिद्रूप है,...** इन्होंने ऐसा कहा था, दौलतराम ने। परन्तु यह ब्रह्मदेव ने, ब्रह्मदेव....

शुद्ध परमात्मा आनन्दरूप चिदानन्दचिद्रूप... यह तो उसमें ही है। '**चिदानन्दैक-रूपाय' उनके लिये मेरा (सदाकाल) नमस्कार होवे, किसलिए ? परमात्मा के स्वरूप के प्रकाशने के लिये। कैसे हैं वे भगवान ? शुद्ध परमात्मस्वरूप के प्रकाशक हैं, अर्थात् निज और पर सबके स्वरूप को प्रकाशते हैं। फिर कैसे हैं ? 'सिद्धात्मने' जिनका आत्मा कृतकृत्य है।** सिद्धात्म को कृतकृत्य है। **सारांश यह है कि नमस्कार करनेयोग्य परमात्मा ही है, इसलिए परमात्मा को नमस्कार कर परमात्मप्रकाश नामा ग्रन्थ का व्याख्यान करता हूँ।** ऐसा भाई दौलतराम स्वयं कहते हैं। अब यह सब बाद में। मूल श्लोक लो अब। योगीन्दुदेव का मूल श्लोक।

प्रथम महाधिकार

गाथा - १

इदानीं प्रथमपातनिकाभिप्रायेण व्याख्याने क्रियमाणे ग्रन्थकारो ग्रन्थस्यादौ मङ्गलार्थमिष्ट-देवतानमस्कारं कुर्वाणः सन् दोहकसूत्रमेकं *प्रतिपादयति-

(१) जे जाया झाणग्गियएँ कम्म-कलंक डहेवि।
णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि।।१।।

ये जाता ध्यानाग्निना कर्मकलङ्कान् दग्ध्वा।
नित्यनिरञ्जनज्ञानमयास्तान् परमात्मनः नत्वा।।१।।

जे जाया ये केचन कर्तारो महात्मानो जाता उत्पन्नाः। केन कारणभूतेन। झाणग्गियए ध्यानाग्निना। किं कृत्वा पूर्वम्। कम्मकलंक डहेवि - कर्मकलङ्कमलान् दग्ध्वा भस्मीकृत्वा। कथंभूताः जाताः। णिच्चणिरंजणणाणमय नित्यनिरञ्जनज्ञानमयाः ते परमप्प णवेवि तान्परमात्मनः कर्मतापन्नान्नत्वा प्रणम्येतितात्पर्यार्थव्याख्यानं समुदायकथनं संपिण्डितार्थ-निरूपणमुपोद्घातः संग्रहवाक्यं वार्तिकमिति यावत्। इतो विशेषः। तद्यथा-ये जाता उत्पन्ना मेघपटलविनिर्गत-दिनकरकिरणप्रभावात्कर्मपटलविघटनसमये सकलविमलकेवलज्ञानाद्यनन्त-चतुष्टयव्यक्तिरूपेण लोकालोकप्रकाशनसमर्थेन सर्वप्रकारोपादेयभूतेन कार्यसमयसाररूप परिणताः। कया नयविवक्षया जाताः सिद्धपर्यायपरिणतिव्यक्तरूपतया धातुपाषाणे सुवर्णपर्यायपरिणति-व्यक्तिवत्। तथा चोक्तं पञ्चास्तिकायेपर्यायार्थिकनयेन ''अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो'', द्रव्यार्थिकनयेन पुनः शक्त्यप्रेक्षया पूर्वमेव शुद्धबुद्धैकस्वभावस्तिष्ठति धातुपाषाणे सुवर्णशक्तिवत्। तथा चोक्तं द्रव्यसंग्रहेशुद्धद्रव्यार्थिकनयेन 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' सर्वे जीवाः शुद्धबुद्धैकस्वभावाः केन जाताः। ध्यानाग्निना करणभूतेन ध्यानशब्देन आगमापेक्षया वीतरागनिर्विकल्पशुक्लध्यानम्, अध्यात्मापेक्षया वीतरागनिर्विकल्परूपातीतध्यानम्। तथा चोक्तम्-'पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम्। रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरञ्जनम्।।' तच्च ध्यानं वस्तुवृत्त्या शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नवीतरागपरमानन्दसमरसीभावसुखरसास्वादरूपमिति ज्ञातव्यम्। किं कृत्वा जाताः। कर्ममलकलङ्कान् दग्ध्वा कर्ममलशब्देन द्रव्यकर्मभावकर्माणि गृह्यन्ते। पुद्गलपिण्डरूपाणि ज्ञानावरणादीन्यष्टौ

* पाठान्तर :- प्रतिपादयति = प्रतिपादयति। तद्यथा -

द्रव्यकर्माणि, रागादिसंकल्पविकल्परूपाणि पुनर्भावकर्माणि। द्रव्यकर्मदहनमनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन, भावकर्मदहनं पुनरशुद्धनिश्चयेन शुद्धनिश्चयेन बन्धमोक्षौ न स्तः। इत्थंभूतकर्ममलकलङ्कान् दग्ध्वा कथंभूता जाताः। नित्यनिरञ्जनज्ञानमयाः। क्षणिकैकान्तवादिसौगतमतानुसारिशिष्यं प्रति द्रव्यार्थिकनयेन नित्यटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावपरमात्मद्रव्यव्यवस्थापनार्थं नित्यविशेषणं कृतम्। अथ कल्पशते गते जगत् शून्यं भवति पश्चात्सदाशिवे जगत्करणविषये चिन्ता भवति तदन्तरं मुक्तिगतानां जीवानां कर्माञ्जनसंयोगं कृत्वा संसारे पतनं करोतीति नैयायिका वदन्ति, तन्मतानुसारिशिष्यं प्रति भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्माञ्जननिषेधार्थं मुक्तजीवानां निरञ्जनविशेषणं कृतम्। मुक्तात्मनां सुप्तावस्थाबद्धहिर्ज्ञेयविषये परिज्ञानं नास्तीति सांख्या वदन्ति, तन्मतानुसारिशिष्यं प्रति जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसर्वपदार्थयुगपत्परिच्छित्तिरूपकेवलज्ञानस्थापनार्थं ज्ञानमयविशेषणं कृतमिति। तानित्थंभूतान् परमात्मनो नत्वा प्रणम्य नमस्कृत्येति क्रियाकारकसंबन्धः। अत्र नत्वेति शब्दरूपो वाचनिको द्रव्यनमस्कारो ग्राह्योऽसद्भूतव्यवहारनयेन ज्ञातव्यः, केवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारः पुनरशुद्धनिश्चयनयेनेति, शुद्धनिश्चयनयेन वन्द्यवन्दकभावो नास्तीति। एवं पदखण्डनारूपेण शब्दार्थः कथितः, नयविभागकथनरूपेण नयार्थोऽपि भणितः, बौद्धादिमतस्वरूपकथनप्रस्तावे मतार्थोऽपि निरूपितः, एवंगुणविशिष्टाः सिद्धा मुक्ताः सन्तीत्यागमार्थः प्रसिद्धः। अत्र नित्यनिरञ्जनज्ञानमयरूपं परमात्मद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः। अने न प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थो व्याख्यानकाले यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्य इति।।१।।

अब, प्रथम पातनिका के अभिप्राय से व्याख्यान किया जाता है, उसमें ग्रंथकर्ता श्री योगीन्द्राचार्यदेव ग्रंथ के आरंभ में मंगल के लिए इष्टदेवता श्री भगवान को नमस्कार करते हुए एक दोहा छंद कहते हैं।

ध्यानाग्नि से कर दहन कर्मकलंक बन परमात्मा।
जो नित्य ज्ञानमयी निरंजन है नमन उनको सदा।।१।।

अन्वयार्थ :- [ये] जो भगवान् [ध्यानाग्निना] ध्यानरूपी अग्नि से [कर्मकलङ्कान्] पहले कर्मरूपी मैलों को [दग्ध्वा] भस्म करके [नित्यनिरंजनज्ञानमयाः जाताः] नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं, [तान्] उन [परमात्मनः] सिद्धों को [नत्वा] नमस्कार करके मैं परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ। यह संक्षेप व्याख्यान किया।

भावार्थ :- जैसे मेघ-पटल से बाहर निकली हुई सूर्य की किरणों की प्रभा प्रबल होती है, उसी तरह कर्मरूप मेघसमूह के विलय होने पर अत्यंत निर्मल केवलज्ञानादि

अनंतचतुष्टय की प्रगटतास्वरूप परमात्मा परिणत हुए हैं। अनंतचतुष्टय अर्थात् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य, ये अनंतचतुष्टय सब प्रकार अंगीकार करने योग्य हैं, तथा लोकालोक के प्रकाशन को समर्थ हैं। जब सिद्धपरमेष्ठी अनंतचतुष्टयरूप परिणमे, तब कार्य-समयसार हुए। अंतरात्म अवस्था में कारण-समयसार थे। जब कार्यसमयसार हुए तब सिद्धपर्याय परिणति की प्रगटता रूपकर शुद्ध परमात्मा हुए। जैसे सोना अन्य धातु के मिलाप से रहित हुआ, अपने सोलहवानरूप प्रगट होता है, उसी प्रकार कर्म-कलंक रहित सिद्धपर्यायरूप परिणमे। तथा पंचास्तिकाय ग्रंथ में भी कहा है - जो पर्यायार्थिकनयकर 'अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो' अर्थात् जो पहले सिद्धपर्याय कभी नहीं पाई थी, वह कर्म-कलंक के विनाश से पाई। यह पर्यायार्थिकनय की मुख्यता से कथन है और द्रव्यार्थिकनयकर शक्ति की अपेक्षा यह जीव सदा ही शुद्ध बुद्ध (ज्ञान) स्वभाव तिष्ठता है। जैसे धातु पाषाण के मेल में भी शक्तिरूप सुवर्ण मौजूद ही है, क्योंकि सुवर्ण-शक्ति सुवर्ण में सदा ही रहती है, जब परवस्तु का संयोग दूर हो जाता है, तब वह व्यक्तिरूप होता है। सारांश यह है कि शक्तिरूप तो पहले ही था, लेकिन व्यक्तिरूप सिद्धपर्याय पाने से हुआ। शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव सदा शुद्ध ही हैं। ऐसा ही द्रव्यसंग्रह में कहा है, 'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया' अर्थात् शुद्ध नयकर सभी जीव शक्तिरूप शुद्ध हैं और पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर शुद्ध हुए। किस कारण से? ध्यानाग्निना अर्थात् ध्यानरूपी अग्निकर कर्मरूपीकलंकों को भस्म किया, तब सिद्ध परमात्मा हुए। वह ध्यान कौनसा है? आगम की अपेक्षा तो वीतराग निर्विकल्प शुक्लध्यान है और अध्यात्म की अपेक्षा वीतराग निर्विकल्प रूपातीत ध्यान है। तथा दूसरी जगह भी कहा है - 'पदस्थं' इत्यादि, उसका अर्थ यह है, कि णमोकारमंत्र आदि का जो ध्यान है, वह पदस्थ कहलाता है, पिंड (शरीर) में ठहरा हुआ जो निज आत्मा है, उसका चिंतवन वह पिंडस्थ है, सर्व चिद्रूप (सकल परमात्मा) जो अरहंतदेव उनका ध्यान वह रूपस्थ है, और निरंजन (सिद्धभगवान्) का ध्यान रूपातीत कहा जाता है। वस्तु के स्वभाव से विचारा जावे, तो शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अभेद रत्नत्रयमई जो निर्विकल्प समाधि है, उससे उत्पन्न हुआ वीतराग परमानंद समरसी भाव सुखरस का आस्वाद वही जिसका स्वरूप है, ऐसा ध्यान का लक्षण जानना चाहिये। इसी ध्यान के प्रभाव से कर्मरूपी मैल वही हुआ कलंक, उनको भस्मकर सिद्ध हुए। कर्म-कलंक अर्थात् द्रव्यकर्म भावकर्म इनमें से जो पुद्गलपिंडरूप ज्ञानावरणादि आठ कर्म वे द्रव्यकर्म हैं, और रागादिक संकल्प-विकल्प परिणाम भावकर्म कहे जाते हैं। यहाँ भावकर्म

का दहन अशुद्ध निश्चयनयकर हुआ, तथा द्रव्यकर्म का दहन असद्भुत अनुपचरित-व्यवहारनयकर हुआ और शुद्ध निश्चयकर तो जीव के बंध मोक्ष दोनों ही नहीं है। इस प्रकार कर्मरूपमलों को भस्मकर जो भगवान हुए, वे कैसे हैं? वे भगवान सिद्ध परमेष्ठी नित्य निरंजन ज्ञानमई हैं। यहाँ पर नित्य जो विशेषण किया है, वह एकान्तवादी बौद्ध जो कि आत्मा को नित्य नहीं मानता, क्षणिक मानता है, उसको समझाने के लिये है। द्रव्यार्थिकनयकर आत्मा को नित्य कहा है, टंकोत्कीर्ण अर्थात् टाँकीकासा घड्या सुघट ज्ञायक एकस्वभाव परम द्रव्य है। ऐसा निश्चय कराने के लिये नित्यपने का निरूपण किया है। इसके बाद निरंजनपने का कथन करते हैं। जो नैयायिकमती हैं वे ऐसा कहते हैं 'सौ कल्पकाल चले जाने पर जगत् शून्य हो जाता है और सब जीव उस समय मुक्त हो जाते हैं तब सदाशिव को जगत् के करने की चिन्ता होती है। उसके बाद जो मुक्त हुए थे, उन सबके कर्मरूप अंजन का संयोग करके संसार में पुनः डाल देता है', ऐसी नैयायिकों के श्रद्धा है। उनके सम्बोधने के लिये निरंजनपने का वर्णन किया कि भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप अंजन का संसर्ग सिद्धों के कभी नहीं होता। इसीलिये सिद्धों को निरंजन ऐसा विशेषण कहा है। अब सांख्यमती कहते हैं - 'जैसे सोने की अवस्था में सोते हुए पुरुष को बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं होता, वैसे ही मुक्तजीवों को बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं होता है।' ऐसे जो सिद्धदशा में ज्ञान का अभाव मानते है, उनको प्रतिबोध कराने के लिये तीन जगत् तीनकालवर्ती सब पदार्थों का एक समय में ही जानना है, अर्थात् जिसमें समस्त लोकालोक के जानने की शक्ति है, ऐसे ज्ञायकतारूप केवलज्ञान के स्थापन करने के लिये सिद्धों का ज्ञानमय विशेषण किया। वे भगवान नित्य हैं, निरंजन हैं, और ज्ञानमय हैं, ऐसे सिद्धपरमात्माओं को नमस्कार करके ग्रंथ का व्याख्यान करता हूँ। यह नमस्कार शब्दरूप वचन द्रव्यनमस्कार है और केवलज्ञानादि अनंत गुणस्मरणरूप भावनमस्कार कहा जाता है। यह द्रव्य-भावरूप नमस्कार व्यवहारनयकर साधक-दशा में कहा है, शुद्धनिश्चयनयकर वंद्य-वंदक भाव नहीं है। ऐसे पदखंडनारूप शब्दार्थ कहा और नयविभागरूप कथनकर नयार्थ भी कहा, तथा बौद्ध, नैयायिक, सांख्यादि मत के कथन करने से मतार्थ कहा, इस प्रकार अनंतगुणात्मक सिद्धपरमेष्ठी संसार से मुक्त हुए हैं, यह सिद्धांत का अर्थ प्रसिद्ध ही है, और निरंजन ज्ञानमई परमात्माद्रव्य आदरने योग्य है, उपादेय है, यह भावार्थ है, इसी तरह शब्द नय, मत, आगम, भावार्थ व्याख्यान के अवसर पर सब जान लेना।।१।।

गाथा- १ पर प्रवचन

अब यह सब बाद में... मूल श्लोक लो अब। ... देव का मूल श्लोक।

१) **जे जाया झाणग्गियएँ कम्म-कलंक डहेवि।**
णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि।।१।।

ये जाता ध्यानाग्निना कर्मकलङ्कान् दग्ध्वा।
नित्यनिरञ्जनज्ञानमयास्तान् परमात्मनः नत्वा।।१।।

इसका अर्थ नीचे है। **श्री योगीन्द्राचार्यदेव ग्रन्थ के आरम्भ में मंगल के लिये इष्टदेवता श्री भगवान को नमस्कार करते हुए एक दोहा छन्द कहते हैं।** साथ में हो, उसे ध्यान रखना। सबको ऐसी पुस्तक मिले, ऐसा नहीं है। **जो भगवान ध्यानरूपी अग्नि से...** न्याय से शुरु किया है। यह परमात्मा हुए कैसे? कहते हैं। आहाहा! यह शुद्ध चैतन्यघन का ध्यान करके हुए हैं। आहाहा! जैसे पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट है, उसे घूँटने से उसमें से बाहर आती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा जिसकी शक्ति में अनन्त ज्ञान, आनन्द है। आत्मा की शक्ति अर्थात् वस्तु का स्वभाव सामर्थ्य, वह अनन्त ज्ञान-दर्शन है, उसका ध्यान किया है। है न? ध्यानरूपी अग्नि पर्याय है। वस्तु त्रिकाल अनन्त ज्ञान, आनन्द है। उसका ध्यान किया अर्थात् ध्यान में ध्येय वस्तु को पूर्णानन्द को बनाकर जिसका ध्यानाग्नि द्वारा **पहले कर्मरूपी मैलों को भस्म करके...** इसका अर्थ यह हुआ कि कर्म थे। मैल की अशुद्धता भी थी। अशुद्धता नहीं थी और दशा में शुद्ध ही है, ऐसा नहीं है।

इसलिए कहा, **कर्मरूपी मैलों को भस्म करके नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं,...** आहाहा! नित्य-निरंजन। है तो पर्याय केवलज्ञान। सिद्धपद है तो अवस्था, परन्तु वह कायम रहनेवाली है, इस अपेक्षा से उसे नित्य कहा। **नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं,...** आहाहा! पंचास्तिकाय में कहा है न, केवलज्ञान कूटस्थ है। कूटस्थ, पंचास्तिकाय में। है तो परिणमन, परन्तु कूटस्थ अर्थात् जैसा ज्ञानस्वभाव त्रिकाल कूटस्थ है, वह ध्रुव। उसके ध्यान से प्रगट हुई दशा ऐसी की

ऐसी कायम रहती है। इसलिए उसे कूटस्थ और नित्य कहने में आता है। समझ में आया? है यह पर्याय की व्याख्या—अवस्था।

आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान और अनन्त ज्ञान के सामर्थ्यवाला पदार्थ प्रभु, उसकी शक्ति—सामर्थ्य ही अनन्त है। ज्ञान-दर्शन-आनन्द, उसका ध्यान करके अर्थात् कि उसकी सन्मुखता में लीन होकर जिसने कर्मकलंक को जलाया। ऐसा कहकर यह भी कहा कि कोई व्रत और तप के विकल्प से कर्म जलें, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जीव की शुद्ध पर्याय से पुद्गल कैसे जले? पुद्गल तो परपदार्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल (अर्थात्) यहाँ अशुद्धता का नाश किया। कर्म का नाश कहना, वह तो निमित्त से कथन है। यह कहेंगे, यह कहेंगे। नय घटित करेंगे। यह असद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है और मलिनता का नाश किया, यह अशुद्ध निश्चयनय से कहा जाता है। नय घटित करेंगे। समझ में आया?

वास्तव में शुद्ध चैतन्यघन प्रभु पूर्णानन्द का पाटला प्रभु है। जैसे यह बर्फ की शिला होती है या नहीं? अभी वहाँ कुण्डला में देखी थी। पाँच मण, दस मण की पाट। पचास मण की पाट। मुम्बई में पचास-पचास मण की पाट। उसमें क्या कहलाता है तुम्हारे? मोटरें, ट्रक। ट्रक में जाती हो पचास-पचास मण की पाट। मात्र शीतल स्वभाव से भरपूर। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा मात्र शान्तरस और आनन्दरस से भरपूर पाट है। आहाहा! भले इसका कद शरीरप्रमाण हो। परन्तु इसका स्वभाव तो आनन्द और ज्ञान का दल पूरा पड़ा है। आहाहा! उसका जिसने ध्यान किया। इसका अर्थ यह हुआ कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह सब ध्यान की पर्याय है।

मुमुक्षु : ध्यान तो चारित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चारित्र ध्यान की ही पर्याय है सब।

ध्यानाग्नि अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों मोक्षमार्ग। उसके ध्यानाग्नि द्वारा... आहाहा! अशुद्ध विकार का नाश किया। यह अशुद्ध निश्चयनय से। और कर्म का नाश किया, वह असद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है। अरे! ऐसी नय की व्याख्या है। **नित्य, निरंजन...** जिसने आत्मा का ध्यान करके जो निरंजन, नित्य, शुद्ध चैतन्य था, जो

ध्रुव नित्य निरंजन ध्रुव था, उसका ध्यान करके दशा में जिसने **नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं,...** आहाहा! ज्ञान की प्रधानता वर्णन की है न।

परमात्मा केवलज्ञानमम, अकेले ज्ञानमय, पूर्णानन्दमय, शान्तमय, स्वच्छतामय, प्रभुतामय **परमात्मा हुए हैं,...** यह परमात्मा जितने हुए, (वे) इस विधि से हुए हैं। समझ में आया? आहाहा! **उन सिद्धों को नमस्कार करके...** ऐसे सिद्ध भगवान। वे सिद्ध भगवान कैसे हुए, इसकी व्याख्या साथ में दी। समझ में आया? यह वस्तु भगवान आत्मा नित्य ध्रुव अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द और अनन्त स्वच्छता के स्वभाव का दल-पिण्ड प्रभु, उसका ध्यान करके... आहाहा! उसे दृष्टि में लेकर, उसे ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर... आहाहा! जिसने स्वरूप में ध्यान से अर्थात् स्थिरता द्वारा, सिद्धपद ज्ञानमय नित्य निरंजन हुए। अर्थात् उपाय भी साथ में बताया। मोक्ष का उपाय क्या? कि मोक्ष हुआ, वह इस उपाय से हुआ; इसलिए मोक्ष का उपाय यह है। आहाहा!

आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी दल प्रभु है। उसका जिसने ध्यान किया, उसके सन्मुख देखकर स्थिर हुए। उन्हें अशुद्ध मलिनता के भाव का नाश होता है। कर्म जड़ का, उस रूप से कर्म है, इसकी अकर्मदशा हो जाती है। यह निमित्त से कथन है। अर्थात् क्या? कर्म की अवस्था का टलना, वह कहीं आत्मा के आधीन नहीं है। उस कर्म की अवस्था का अकर्मरूप होने का उसका काल था। आहाहा! और यहाँ अशुद्धता नाश होने का काल था। तब शुद्धता के ध्यान में स्थिर होकर अशुद्धता नाश की और कर्म का नाश किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें अब। इस प्रकार सिद्ध हुए, उन्हें हमारा नमस्कार!

यह णमो अरिहन्ताणं आता है या नहीं? उसका ऐसा अर्थ है। यह अरिहन्त का बाद में लेंगे। शास्त्र में तो ऐसा चलता है कि णमो लोए त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। अभी तो णमो अरिहंताणं, इतना चलता है। अन्तिम णमो लोए सव्व साहूणं आता है न? वह सबको लागू पड़ता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। परन्तु इसके उपरान्त सिद्धान्त में तो ऐसा अधिक चलता है कि णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व अरिहंताणं।

आहाहा! जो अरिहंत भविष्य में होंगे, भूतकाल में हुए, अभी हैं और होंगे। आहाहा! जो अभी अरिहंत, उनका जीव अभी तो कहीं नरक और निगोद में पड़ा होगा। आहाहा! परन्तु भविष्य में उनकी दशा होनेवाली है, उसे भी परमात्मा ऐसा कहते हैं कि णमो लोए—नमस्कार हो लोक में। (स्थित) त्रिकालवर्ती सव्व अरिहंताणं। तीनों काल में वर्तनेवाले अरिहंतों को मेरा नमस्कार हो। समझ में आया? आहाहा! स्वयं भी अरिहन्त होनेवाला है, उसका नमस्कार अभी आ जाता है। ऐई! आहाहा! समझ में आया?

णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व अरिहंताणं। धवल में ऐसा सिद्धान्तपद है। जो परम्परा में आये हुए आगम, सिद्धान्त सर्वज्ञ अनुसारिणी, उस वाणी में यह आया था। आहाहा! कितनी विशालता! मैं तो तीनों काल के सर्व वर्तनेवाले, वर्ता और वर्तेगें... आहाहा! उन्हें मेरा नमस्कार। जयन्तीभाई! यह सुना है या नहीं? अपने कहा गया है यहाँ तो। पहला यहाँ नहीं। परन्तु रविवार को आना तुम्हारे। तब हो, न हो। आहाहा! णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व सिद्धाणं। आ गये, कहते हैं। नमस्कार हो लोक में, जिन्हें ध्यानाग्नि द्वारा; व्रत और क्रिया और बाहर के तप द्वारा नहीं, अनशन, ऊनोदर आदि बाहर के तप तो विकल्प हैं।

मुमुक्षु : क्रियानय से भी सिद्धदशा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल से नहीं होता। इस क्रिया से होता है। यह क्रिया—आनन्द की क्रिया। शुभ से नहीं होता। यह शुभ, इसे शुभ कहते हैं। इसे शुभ कहते हैं। (समयसार के) पुण्य-पाप (अधिकार) में आता है न? आहाहा!

भगवान आनन्द और ज्ञान का सागर प्रभु, एक-एक आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, यह उसकी शक्ति है। अर्थात् कि यह उसका सामर्थ्य है। अर्थात् कि यह उसका गुण है, अर्थात् कि उसका स्वभाव है, अर्थात् कि इस सत् का ऐसा इतना सत्त्व है। आहाहा! ऐसे सत्त्व का जिसने ध्यान किया। आहाहा! सम्यग्दर्शन वह भी एक ध्यान की पर्याय है। स्व की एकाग्रता। पूर्ण अनन्त आनन्दस्वरूप, उसका वर्तमान ज्ञान की पर्याय में पूर्ण वस्तु का ज्ञान होकर... एक समय की पर्याय में पूर्ण स्वरूप द्रव्य का गुण, उसका ज्ञान होकर, जो पर्याय में—अवस्था में ज्ञेय ज्ञात हुआ,

वह ज्ञात हुआ, उसकी श्रद्धा, इसका नाम सम्यग्दर्शन। वह भी जानने की एकाग्रता के साथ दर्शन हुआ। आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत ऐसा सूक्ष्म भाई! लोगों ने तो बाहर में रगड़कर मार डाला, नोंच डाला है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा तीनों काल जिसे सिद्धपद प्राप्त हुआ और होगा, उसे मेरा नमस्कार! ओहोहो! भूतकाल के अनन्त सिद्ध हुए। सिद्धपद बिना का कोई काल नहीं कि भाई, यह सिद्ध नये हुए और पहले सिद्ध नहीं थे। ऐसा है? आहाहा! अनन्त सिद्ध अनादि के हैं और अनन्त सिद्ध वर्तमान में हैं और अनन्त सिद्ध भविष्य में होंगे। आहाहा! अनन्त सिद्ध की प्रतीति तीन काल में वर्तने की निर्मल दशा इस प्रकार से हुई, उसका ज्ञान करके उसे नमस्कार। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई!

पश्चात् णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। नमस्कार हो लोक में... लोक में है न यह? पंच परमेष्ठी। लोक्यन्ते इति लोक। जिसमें जीव-अजीव ज्ञात हों, उसे लोक कहते हैं। उस लोक में है, वे कहीं अलोक में नहीं है। समझ में आया? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं। आहाहा! स्वरूप के साधक, अनन्त आनन्द के स्वसंवेदन प्रचुर वेदन के अनुभवी ऐसे त्रिकालवर्ती—तीनों काल में वर्तनेवाले—ऐसे आचार्यों को सर्व को मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं। यह पाँच पद की व्याख्या चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : उपाध्याय की पदवी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे? यह उपाध्याय की पदवी दी जाती है न? ऐसा कहते हैं। ऐसे पदवी दी जाती होगी?

अन्तर में आनन्द का नाथ जागकर जिसे अन्तर में आनन्द का उग्र वेदन हुआ है, उसके समीप में जगत के प्राणी अभ्यास करें। परन्तु वह अपने तो समीप में जो अनन्त आनन्द प्रगट हुआ है, वह उपाध्याय है। आहाहा! जिसके स्वभाव में अनन्त आनन्द रेलमछेल भरा है, प्रभु! आहाहा! अपरिमित, अमाप आनन्द जिसका—भगवान आत्मा का स्वरूप है, उसका जिसने ध्यान करके आचार्यपद प्राप्त किया है। आहाहा! किसी ने आचार्यपद दिया है, वह नहीं।

मुमुक्षु : गुरु दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे? यह तो व्यवहार की बातें हैं। इसमें ही उपाध्याय पदवी प्रगट होने की क्षयोपशमदशा थी, वह प्रगट हुई है। यह नहीं आता? क्षयोपशम। उसमें नहीं आता? द्रव्यसंग्रह में। द्रव्यसंग्रह में आता है। आहाहा!

जिसका अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ जागकर,... उपाध्याय जिसे कहते हैं, जिसका अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ जागकर उठा और अन्दर में दशा में प्रचुर आनन्द का वेदन वर्तता है और जिसकी दशा त्रिकाल स्वरूप के समीप में वर्तती है। अनादि से जो दूर थी, राग और द्वेष में वर्तता था, वह भगवान आत्मा अपने आनन्द के नाथ के शुद्ध के समीप में वर्तकर आनन्द वर्तता है। उसे यहाँ उपाध्याय कहा गया है। यह बाहर की सब उपाध्याय की पदवी देते हैं (वह नहीं)। भान (नहीं), अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और हो गये आचार्य और उपाध्याय। क्या हो? भाई! यह तो जैन परमेश्वर का, वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग है। यह कहीं ऐरे-गैरे बीच में पड़े और मार्ग बनावे, ऐसा है नहीं।

यहाँ कहते हैं, ऐसे णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उपाध्याय, ऐसे णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सर्व साधु। आहाहा! वापस इसमें सर्व साधु में ऐसा अर्थ करते हैं। वह सुशीलकुमार है न? स्थानकवासी का। गया था न अभी अमरेली? अमरेली क्या कहलाता है अमेरिका। अमेरिका। उसे अंग्रेजी नहीं आती, इसलिए वहाँ हिन्दी भाषा की। थोड़े-बहुत लोग इकट्ठे होते थे। कुछ नहीं होता। वहाँ से चला आया मुँहपत्ती सहित। यह वह कहीं मार्ग है।

मुमुक्षु : अमेरिका में उसे देखने बहुत आते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ नहीं आते, कहते हैं। अंग्रेजी नहीं आती थी न। हिन्दी बोलता था। यहाँ के हो न सौराष्ट्र के, वे आते थे। ऐसा लिखा है समाचारपत्र में। थोड़े-बहुत इकट्ठे होते सौ-डेढ़ सौ। अब चला आया, ऐसा कहते हैं। उसमें—स्थानकवासी में बड़ा विवाद है। उसके आचार्य ने उसे साधु में से रद्द किया है। यों भी साधु था कब? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक है। आहाहा!

साधु तो उसे कहते हैं कि आनन्द के नाथ को—अन्तर के स्वरूप को साधे, उसे साधु कहते हैं। यह पंच महाव्रत पालन करे और नग्नपना (रखे), वह कहीं साधुपना नहीं है। आहाहा! यह पंच महाव्रत की क्रिया, वह तो अभी है भी कहाँ? परन्तु वह क्रिया हो, वह भी कहीं साधुपना नहीं। आहाहा! साधुपना तो भगवान आत्मा का आनन्द का सागर अन्दर झूलता—डोलता है। आहाहा! ऐसे आनन्द के सागर में डुबकी लगाकर, एकाग्र होकर उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का साधन प्रगट किया है.... आहाहा!

उसने अभी लिया है न? भाई! चीमनचकु ने यहाँ का विरोध कहा है। भोले लोगों को ऐसा करते हैं। यहाँ श्रीमद् में ऐसा कहा है। साधन करना सोय। क्या साधन? सुन न! उसे बेचारे को... बौद्ध और महावीर दोनों मोक्ष पधारे, ऐसा कहता है। अब कहाँ बौद्ध मिथ्यादृष्टि, कहाँ भगवान केवली!

मुमुक्षु : वे तो .... गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ... गये। उसे दुनिया में बाहर की इज्जत... मर जानेवाले हैं बेचारे। परन्तु अभी पुण्य हो बाहर। आहाहा! बौद्ध भगवान मोक्ष पधारे, महावीर मोक्ष पधारे, ऐसा कहता है। और उसे श्रद्धा तो वेदान्त की है। जीवन का रहस्य।

मुमुक्षु : तब तो महावीर भी मोक्ष न पधारे और बौद्ध भी मोक्ष न पधारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : घड़ीक में यह कहे। कहाँ ठिकाना है इसका? उसने ऐसा कहा कि यह साधन चाहिए। क्या साधन? व्यवहार के विकल्प, वे साधन ही नहीं हैं। साधन तो अन्तर राग से भिन्न करके प्रज्ञारूपी छैनी से अनुभव से साधन करे, उसे साधन कहा है। समझ में आया? प्रज्ञा करण है। भगवान! सूक्ष्म बात है, भाई!

शुद्ध आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द है। उसे चाहे तो व्वयहाररत्नत्रय का देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग हो, परन्तु उस राग से भिन्न करे। आहाहा! ज्ञान की पर्याय की छैनी द्वारा। अर्थात् कि राग और स्वभाव के बीच सांध है। आहाहा! त्रिकाल आनन्द का दल प्रभु और राग विकार विकल्प, दो के बीच सांध है, दरार है। जैसे पत्थर के बड़े

दल होते हैं, उसमें बीच में सूक्ष्म रग होती है। सफेद-हरी रग होती है। उस रग में छेद पाड़कर सुरंग मारे। तब पत्थर भिन्न ही अन्दर हैं। ऊपर का और नीचे का, दोनों एक हुए ही नहीं। पत्थर के दल में, दो पत्थर के बीच सूक्ष्म रग होती है। ऊपर के पत्थर और नीचे के पत्थर के बीच अन्तर होता है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा अकेले स्वभाव के ध्रुव दल और विकल्प की—विभाव की वृत्तियों के विकार, दो के बीच दरार है—दो के बीच सांध है। राग और स्वभाव दोनों एक हुए नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें! पत्थर में बारीक रग होती है। यहाँ बीच में सांध होती है।

अर्थात् कि भगवान ज्ञानस्वभावी आनन्द प्रभु, जब ज्ञान की वर्तमान पर्याय को इस ओर झुकाता है, तब राग और दोनों भिन्न पड़ जाते हैं अर्थात् कि भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान की वर्तमान दशा और राग दो के बीच दरार—सन्धि है—सांध है। आहाहा! इसलिए वर्तमान ज्ञान की दशा को इस ओर से विमुख करने पर... होती है विमुख, इसका अर्थ कि इसमें एकमेक नहीं। समझ में आया? ऐसा कठिन मार्ग, भाई! आहाहा! समझ में आया? समझ में आया, इसका अर्थ भी करते हैं न? समझ में आया, यह तो कहा। परन्तु कुछ अर्थात् किस पद्धति से कहा जाता है, (वह ख्याल में आता है)? आहाहा! भाई! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मप्रकाश का मांगलिक होता है यह तो। परमात्मप्रकाश ही है न? उसका पहला मांगलिक करते हैं यह। समझ में आया?

भाई! साधु किसे कहना? आहाहा! जिन्हें आत्मा के आनन्द का स्वाद आया होता है। सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का स्वाद आवे। आहाहा! क्यों? वस्तु है वह आनन्दमय है और वस्तु को जब श्रद्धा में साधी, तब वस्तु के जितने गुण हैं, उन सबका व्यक्त अंश पर्याय में प्रगट होता है और वेदन में आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु, यह आत्मा, हों! इसका स्वाद इसे आवे, तो मुनि की क्या बात करना! ओहोहो! (समयसार की) पाँचवीं गाथा में कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, प्रचुर स्वंसवेदन हमारा वैभव है। यह दुनिया की धूल और शरीर, वाणी और स्त्री-पुत्र और यह क्या कहलाता है? फर्नीचर। वह वैभव कहलाता है न? वह धूल का वैभव अज्ञानी का है। आहाहा!

मुमुक्षु : वैभव तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी वैभव नहीं। वहाँ गये थे न? नहीं वे... ? शान्ताबेन के बहनोई की बहिन है, वहाँ मुम्बई। मणिभाई है। वहाँ शाम को आहार करने गये थे। पाँच-छह करोड़ रुपये। पाँच-छह करोड़। वह पूरा एक लिया। क्या कहलाता है वह? ब्लॉक? बड़ा ब्लॉक और सर्वत्र मखमल बिछाया हुआ। सर्वत्र चरण कराये। मखमल-मखमल। लगभग साढ़े पाँच लाख रुपये का तो फर्नीचर होगा। ऐसा कहते थे। समझ में आया? यह श्मशान में जब हड्डियाँ अकेली होती हैं न? हड्डियों में फासफूस... (चमक) क्या कहते हैं? फोसफरस होती है ऐसी। चमक... चमक होती है।

(जो) बाहर के वैभव का माहात्म्य दे, वह अपने वैभव का अनादर करता है। आहाहा! समझ में आया? निज वैभव त्रिकाल है, वह तो है। वह नहीं। परन्तु त्रिकाल में से अनन्त आनन्द की शान्ति आदि प्रगट की तो बेहद... कल नहीं कहा था जरा? चारित्र में से। अक्षय अमेय। आहाहा! जिसकी साधकदशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह भी अक्षय और अमेय है। क्षय न हो और मर्यादा बिना जिसकी दशा। वस्तु जिसका स्वभाव प्रगट हुआ। आहाहा! उसके स्वभाव के सागर जहाँ से ज्वार में उछला। जैसे समुद्र ज्वार में किनारे उछलता है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा त्रिकाली आनन्द के नाथ पर श्रद्धा और ज्ञान का जोर देने से, अन्दर में से आनन्द की निर्मल पर्याय उछलती है। आहाहा! ज्वार आवे, ज्वार। अरे... अरे! ऐसी बातें।

मुमुक्षु : अभी तो ज्वार में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देखो न बाहर का कहते हैं। आहाहा!

यह वर्षा है मूसलधार आत्मा का। आहाहा! वस्तु स्वभाव, 'वस्तु सहावो धम्मो'। ऐसा कहा है न? वस्तु का स्वभाव वह धर्म, ऐसा कहा है न? आता है न? वस्तु जो भगवान, उसका स्वभाव वह धर्म। अर्थात्? उसका अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि जो स्वभाव, वह त्रिकाल धर्म। अब उस धर्म का आश्रय लेकर प्रगट दशा हुई, वह धर्म। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। वस्तु भगवान आत्मा में ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त शक्तियाँ बसी हुई हैं, वह इसका धर्म। धर्मी आत्मा और वह उसका त्रिकाल धर्म। वह त्रिकाल धर्म और धर्मी को दृष्टि में लेकर जो पर्याय में आनन्द की शान्ति का वैभव प्रगट

हुआ, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया? यह यहाँ पहले सिद्ध को नमस्कार किया। परन्तु त्रिकाली सिद्ध, हों! तीन काल, आहाहा! कितना विश्वास!

अपने आता है न समयसार में। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' सर्व सिद्ध में सब आ गये। आहाहा! उसकी श्रद्धा में अनन्त आत्मायें और अनन्त आत्मा सिद्ध हो गये और तीन काल में जो हुए, होते हैं और होंगे, उन सब सिद्धों को मैं नमस्कार... नमस्कार... (करता हूँ)। आहाहा!

नमस्कार करके मैं परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ। आहाहा! इस प्रकार सिद्ध भगवान कैसे हुए, ऐसा कहकर, सिद्ध जो हुए उन्हें मेरा नमस्कार है। आहाहा! क्योंकि मुझे भी सिद्धपद प्राप्त करना है। आहाहा! और मैं भी सिद्ध होनेवाला हूँ। तो मैं भी त्रिकाली सिद्ध में आ जाता हूँ। आहाहा! इसलिए मुझे भी नमस्कार हो। समझ में आया? आहाहा! **यह संक्षेप व्याख्यान किया। इसके बाद विशेष व्याख्यान करते हैं।** यह संक्षिप्त में कहा। अब इसका एक-एक का विशेष स्पष्टीकरण अधिक करते हैं।

जैसे मेघ-पटल से बाहर निकली हुई सूर्य की किरणों की प्रभा प्रबल होती है... क्या कहते हैं? बादल की आड़ में सूर्य होता है। परन्तु बादल हट जाये, तब उस सूर्यकिरणों की प्रभा प्रबल होती है। तेज-तेज। सूर्य का प्रकाश। **मेघ-पटल से बाहर निकली हुई सूर्य की किरणों की प्रभा प्रबल होती है, उसी तरह कर्मरूप मेघसमूह के विलय होने पर...** आहाहा! अशुद्ध भावकर्म और द्रव्यकर्म निमित्तरूप से। उसका विलय होने से। आहाहा! चैतन्यसूर्य तो प्रकाशमय अन्दर विराजता है। चैतन्य के प्रकाश के नूर का तेज का पूर प्रभु है। आहाहा! वह आत्मा अर्थात् चैतन्यस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, चैतन्यप्रकाश स्वभाव, उसके तेज का वह पूर है। आहाहा! उसके प्रकाश की किरणें निकली, कहते हैं। अशुद्धता के नाश से, कर्म का निमित्त जड़ चीज़ उसके अभाव से अन्दर सूर्य—जो शक्ति थी, उसमें से व्यक्तदशा प्रगट हुई। आहाहा! कितनी स्वीकृति हैं इसमें! द्रव्य की स्वीकृति, द्रव्य की शक्ति की स्वीकृति और द्रव्य में प्रगट होती पर्याय की स्वीकृति। तीन की (स्वीकृति)। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण और पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों आ गये। आहाहा!

क्योंकि द्रव्य है, वह शक्तिवान है और उसकी शक्ति है, वह गुण है। भले निगोद में जीव हो, परन्तु शक्ति तो उसकी ज्ञान-दर्शन शक्ति सामर्थ्य है, वह कहाँ जाये? आहाहा! क्षेत्र भले संक्षिप्त हो गया। भाव संक्षिप्त नहीं हुआ, शक्ति। आहाहा! ऐसा कहाँ (मिले)? इसे विश्वास में आना चाहिए कि ऐसा प्रभु आत्मा। जिसका शक्तिपना, शक्तिवान का शक्तिपना, स्वभाववान का स्वभावपना, सामर्थ्यवान का सामर्थ्यपना। आहाहा! भगवान आत्मा का तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शान्ति, आनन्द जिसका सामर्थ्यपना है, उस अशुद्धता के अभाव से उन्हें शुद्धता की किरणें प्रगट हुई, कहते हैं। आहाहा! ऐसी सब भाषा। ऐसा उपदेश। भाई! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, प्रभु! दुनिया ने तो बाहर में मानकर बैठे। वह वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **मेघ-पटल से बाहर निकली हुई सूर्य की किरणों...** यह तो दृष्टान्त है, दृष्टान्त। **उसी तरह कर्मरूप मेघसमूह के विलय होने पर अत्यन्त निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय की...** आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द। केवल अर्थात् पूरा। ऐसा। पूरा आनन्द, पूरा ज्ञान, पूरी शान्ति, पूरी स्वच्छता। आहाहा! ऐसे जो केवलज्ञानादि। **अत्यन्त निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय की प्रगटता स्वरूप...** भगवान को अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए हैं। अर्थात्? कि भगवान आत्मा का स्वभाव त्रिकाल अनन्त चतुष्टयमय है। आत्मा का स्वभाव त्रिकाल अनन्त चतुष्टयमय—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। ऐसा अनन्त चतुष्टय शक्ति सम्पन्न प्रभु है। वह अन्दर की पर्याय में अशुद्धता का नाश करके किरण प्रगट हुई, यह अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए। आहाहा! समझ में आया? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं (बोले), लो, हो गया। किसे कहना सिद्ध? कैसे हुए सिद्ध? इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य... है? **परमात्मा परिणत हुए हैं।** आहाहा! एक तो अस्तिरूप से परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा अस्तिरूप से, मौजूदगीरूप से त्रिकाल अनन्त ज्ञान-दर्शन-वीर्य और आनन्द तो था। वस्तु है, उसकी शक्तियाँ अनन्त अर्थात् जिसका अन्त नहीं, ऐसी बेहद शक्तियाँ अनन्त चतुष्टय थी। आहाहा! उसका ध्यान करके। ऐसा आया न? इसका अर्थ है यह तो। आहाहा! अनन्त

केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, अनन्त चतुष्टय (स्वरूप) **परमात्मा परिणत हुए हैं।** आहाहा! जिसकी वर्तमान पर्याय में अर्थात् अवस्था में—हालत में—दशा में, जो शक्तिरूप से अनन्त चतुष्टय थे—अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य, वह पर्यायरूप चतुष्टय प्रगट हुए। आहाहा!

परमात्मा परिणत हुए हैं। अनन्त चतुष्टय अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, ये अनन्त चतुष्टय सब प्रकार अंगीकार करनेयोग्य हैं। आहाहा! कहते हैं कि यह अनन्त चतुष्टय जो प्रगट हुए, वे उपादेय और आत्मा को आदर करने योग्य हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : वह तो पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साध्य है न? ध्येय द्रव्य है, परन्तु साध्य तो वह है न! समयसार में अन्तिम आता है। साध्य अर्थात् पूर्ण केवलज्ञानादि सिद्ध परमात्मा, वे साध्य हैं। समझ में आया? और ऐसा भी आता है कि अनन्त सुख का जिसे भान हुआ है, वह अनन्त सुखरूपी परमात्मा को उपादेय मानता है। अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु जिसे अनन्त आनन्द का स्वाद अन्दर आया है, वही अनन्त आनन्दमय परमात्मा को उपादेय मानता है। समझ में आया? अरे! कहाँ जगत भटकता है। कहाँ भटकने का मार्ग अलग! भटकना रोकने का मार्ग अलग है। आहाहा!

ये अनन्त चतुष्टय सब प्रकार अंगीकार करनेयोग्य हैं,... आहाहा! **तथा लोकालोक के प्रकाशन को समर्थ हैं।** केवलज्ञान। **जब सिद्धपरमेष्ठी अनन्त चतुष्टयरूप परिणमे, तब कार्य-समयसार हुए।** लो! क्या कहा यह? पर्याय में, परिणति में अनन्त ज्ञान, दर्शन प्रगट हुए, तब अनन्त चतुष्टय पर्याय में प्रगट हुए, वे कार्यसमयसार हुए। और वस्तु है, वह कारणसमयसार। त्रिकाल वस्तु है, वह कारणसमयसार है।

मुमुक्षु : पर्याय को कारणसमयसार कहा जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी कहा जाता है। परन्तु अभी यहाँ यह नहीं लेना। अभी प्रगट दशा को कार्यसमयसार कहा। उसके उपाय को भी कारणसमयसार कहा जाता है। परन्तु यह तो त्रिकाल कारणसमयसार (की बात है)। आहा!

अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे। देखा! क्या कहा यह? वे कहते थे

न? भाई! त्रिभुवनभाई। यह कारणसमयसार कहते हो तो कार्य होना चाहिए। यहाँ यह भाषा ली, देखा! क्या कहा? **अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे।** ऐसे तो कारणसमय(सार) त्रिकाल है परन्तु त्रिकाल का अनुभव हुआ, तब वह कारणसमयसार उसे ख्याल में आया। इसलिए कहा **अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे।** अर्थात् कि पर्याय में कारणसमयसार जो साध्य का प्रगट हुआ, उसे भी कारणसमयसार कहते हैं और त्रिकाली को भी अन्तरात्मा में त्रिकाली कारणसमयसार का भान हुआ, उसे त्रिकाल कारणसमयसार कहते हैं। जिसे भान नहीं उसे कारणसमयसार कहाँ आया? अरे! ऐसी बातें यह। समझ में आया?

अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे। जब कार्यसमयसार हुए, तब सिद्धपर्याय परिणति की प्रगटतारूपकर शुद्ध परमात्मा हुए। अन्तरात्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान समय, वह कारणसमयसार पर्याय थी। उसका त्रिकाली कारण तो तब बैठा, तब उसे कारण पर्याय हुई न? त्रिकाली वस्तु जो कारण प्रभु ध्रुव है, वह है तो सही परन्तु है वह अनुभव में आया, तब उसे कारणसमयसार बैठा (भान हुआ)। तब पर्याय को कारणसमयसार, कार्यसमयसार का उपाय कारणसमयसार कहा गया है। उस पर्याय को, हों! आहाहा! कहा न? **अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे।** अर्थात् पर्याय में प्रगट हुआ है, उसे कारणसमयसार कहा जाता है। ऐसी भाषा कभी सुनी न हो। कारणसमयसार और कार्यसमयसार। वह तो इच्छामी पडिकमणा करना और तस्सउतरी करणेणं और करेभि भंते सामायिक। यह हो गयी सामायिक। अरे..! धूल भी नहीं, सुन न! अभी सम्यग्दर्शन का भान नहीं, वहाँ सामायिक आयी कहाँ से? समझ में आया? आहाहा!

अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे। इसके अर्थ दो। कि अन्तर आत्मा में वर्तमान पर्याय प्रगट हुई, वह कारणसमयसार। परन्तु उसे कारणसमयसार त्रिकाल है, वह अनुभव में आया, इसलिए पर्याय में कारणसमयसार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सब भाषा में अन्तर, भाव में अन्तर, यह कोई नया धर्म होगा ऐसा? ऐई! कान्तिभाई! सोनगढ़वालों ने नया धर्म निकाला, ऐसा लोग कहते हैं। भाई! तूने सुना

नहीं, प्रभु! धर्म तो अनादि का यह ही है। तूने सुना नहीं, इसलिए तेरे लिये नया लगता है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा को नमस्कार करते हुए परमात्मपर्याय प्रगट हुई, उसे कार्यसमयसार कहा। और अन्तरात्मदशा में पर्याय प्रगट हुई, उसे कारणसमयसार (कहा)। उस कारणसमयसार का फल कार्यसमयसार, ऐसा। परन्तु वह कारण पर्याय में, कारणसमयसार में अन्तरात्मा पूर्ण है, उसका ज्ञान हुआ है, उसकी प्रतीति हुई है, वह ज्ञान में ज्ञात हो गया है, इसलिए उसकी पर्याय में कारणसमयसार कहने में आता है। आहाहा! क्या कहा यह? यह तो अब शीतल पहर का यहाँ तो है न! शान्ति से... आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप तो कारणसमयसाररूप त्रिकाल है। कारणपरमात्मारूप से तेरा स्वरूप त्रिकाल है। परन्तु उस कारणपरमात्मा को जिसने अन्तर ध्यान से स्वीकार किया, तब उसकी पर्याय में कार्यसमयसार ऐसा परमात्मा, उसका कारण प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया? अब एक घण्टे में किस प्रकार की बातें आवे! गिरीश! वहाँ तेरे बाप के पैसे-देना और लेना, इसमें कुछ बहुत नया कुछ नहीं होता। यह पैसा दिया और लिया। किसी को सवा टके और किसी को डेढ़ टके। अब उसमें कुछ तर्क भी नये आते नहीं। हमारे हीराभाई कहते थे। हीराचन्दभाई मास्टर। हम मास्टर सब... क्या कहलाता है वह? पंतु कहलाते हैं। क्योंकि हमारे वह का वह सिखाना। उसमें कुछ नया होता नहीं। कुछ नये तर्क करने के नहीं होते। वह का वह और वह का वह, यह इसका इतिहास और अमुक और ढींकणा। हम तो सब पन्तु हैं। व्यापारियों को तो कुछ तर्क भी करना नहीं पड़े, वकीलों को तो अधिक तर्क करना पड़े। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह सब तर्क से पार ऐसा भगवान अन्दर विराजता है। उसे जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान में उसका—पूर्णानन्द का आदर करके, जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ है, उस जीव को कारणसमयसार अर्थात् मोक्ष के मार्ग की पर्याय प्रगट हुई, मार्ग प्रगट हुआ। मार्ग अर्थात् कारण। मार्ग अर्थात् कारण। मार्ग अर्थात् कारण और फल, वह कार्य। आहाहा! समझ में आया? मार्ग समझने की, भाई! सूक्ष्मता है, बापू! अनन्त काल में इसने आत्मा ऐसा पूर्ण शुद्ध चैतन्य है, उसके सन्मुख इसने देखा नहीं।

उसके सम्मुख देखे तब उसका स्वीकार किया जाये। परन्तु उसके सन्मुख देखा नहीं और पर्याय में—अवस्था में अवस्था के सन्मुख देखा। या अवस्था लम्बाये तो उस राग के सन्मुख देखे। वह तो पर्यायबुद्धि-मिथ्याबुद्धि है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन की बुद्धि का ज्ञान तब होता है... आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी अन्तरात्मा। अर्थात् कि अन्तरात्मा जैसी पूर्ण चीज़ है, उसे जिसने स्वीकार किया, वह पर्याय में अन्तरात्मा हुआ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी भाषा और यह सब... सम्प्रदाय में तुमने ऐसी बात कभी सुनी है? जयन्तीभाई! परन्तु वहाँ तत्त्व ही कहाँ है सम्प्रदाय में। क्रियाकाण्ड का ढोंग है अकेला। आहाहा! यह वस्तु सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कही हुई चीज़ है, वह यह है। आहाहा!

जब कार्यसमयसार हुए तब सिद्धपर्याय परिणति की प्रगटतारूपकर शुद्ध परमात्मा हुए। लो! जब अन्तरात्मा हुआ, पूर्णानन्द के नाथ का अन्तर स्वरूप जो है, उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान में जहाँ भान किया, तब वह अन्तरात्मा कारणरूप से हुआ। उसके कार्यरूप से सिद्ध अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए। वह अन्तरात्मा अवस्था कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः है न? वह अन्तरात्मा कहो या यह मार्ग कहो। वस्तु जो त्रिकाली भगवान, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता, वह अन्तरात्मदशा अर्थात् मोक्षमार्ग की अवस्था। उसके फलरूप से सिद्ध भगवान कार्यसमयसार हुए। कार्यसमयसार, कारणसमयसार किसे कहना, वह भी स्वरूप साथ में आ गया। और ध्यानाग्नि करना, वह ध्यान स्वयं कारणसमयसार है। समझ में आया? क्योंकि त्रिकाली भगवान कारणसमयसार का ध्यान किया तो पर्याय में कारणसमयसार हुआ। था, वह हुआ। वह पूर्ण कार्य हो, उसे सिद्ध भगवान (कहते हैं)। ऐसे सिद्ध भगवान को नमस्कार करके, मैं 'परमात्मप्रकाश' कहना चाहता हूँ, ऐसा कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)